दैनिक जागरण

Date:07-10-23

रेवड़ी संस्कृति का रोग

संपादकीय

यह अच्छा हुआ कि सुप्रीम कोर्ट ने विभिन्न राज्य सरकारों की ओर की जाने वाली लोकलुभावन घोषणाओं का संज्ञान लिया और मध्य प्रदेश, राजस्थान सरकार के साथ केंद्र सरकार, चुनाव आयोग एवं रिजर्व बैंक को भी नोटिस जारी किया। मध्य प्रदेश और राजस्थान सरकार को नोटिस जारी करने का कारण यह है कि चुनाव करीब आते देखकर इन राज्यों की सरकारें लोकलुभावन घोषणाएं करने में लगी हुई हैं। कुछ ऐसा ही काम विधानसभा चुनाव वाले अन्य राज्यों में भी हो रहा है। इसे लेकर दायर जनहित याचिका में यह सही कहा गया है कि राज्य सरकारें अपने अंतिम वर्ष में लोकलुभावन घोषणाओं की झड़ी लगा देती हैं और ऐसा करते समय यह भी ध्यान नहीं रखतीं कि उनकी आर्थिक स्थिति उनके वादों को पूरा करने की अनुमति देती है या नहीं? चुनाव जीतने के लिए लोकलुभावन घोषणाएं केवल सत्तारूढ़ दल ही नहीं करते। विपक्षी दल भी ऐसा ही करते हैं। वे यह बताने से इन्कार करते हैं कि घोषणा पत्रों के जरिये जनता को लुभाने के लिए जो वादे किए जा रहे हैं, उन्हें पूरा कैसे किया जाएगा? नतीजा यह होता है कि ऐसे दल जब कभी सत्ता में आ जाते हैं तो धन की कमी का रोना रोने लगते हैं या फिर अपनी घोषणाओं को आधे-अधूरे ढंग से पूरा करने की कोशिश करते हैं। इसका उदाहरण है कर्नाटक, जहां कांग्रेस लोकलुभावन वादों के चलते सत्ता में तो आ गई, लेकिन अब उसे विकास कार्यों को आगे बढ़ाने में कठिनाई हो रही है। इसी तरह की समस्या का सामना उन राज्य सरकारों को भी करना पड़ रहा है, जिन्होंने लोकलुभावन वादे किए थे।

निःसंदेह भारत जैसे देश में जहां करोड़ों लोगों को निर्धनता से उबारना है, वहां जन कल्याण की योजनाएं तो चलानी ही होंगी, लेकिन जन कल्याण के काम करने और रेवड़ियां बांटने में अंतर होता है। इस अंतर को समझने के बजाय रेवड़ी संस्कृति को अपनाया जा रहा है। जब एक दल ऐसा करता है तो दूसरा भी ऐसा ही कुछ करने को विवश हो जाता है। अब तो आर्थिक नियमों की अनदेखी करके लोकलुभावन वादे किए जा रहे हैं। निर्धन लोगों का उत्थान तभी किया जा सकता है, जब राज्य आर्थिक रूप से सक्षम बने रहेंगे। राजनीतिक दलों को यह समझना होगा कि आर्थिक सक्षमता वित्तीय नियमों की उपेक्षा करके नहीं प्राप्त की जा सकती। यदि राज्य सरकारें वित्तीय रूप से सक्षम नहीं बनतीं तो वे न तो लोकलुभावन वादों को पूरा कर सकती हैं और न ही विकास के कामों को आगे बढ़ा सकती हैं। विडंबना यह है कि कमजोर आर्थिक स्थिति वाले राज्यों में भी राजनीतिक दल रेवड़ी संस्कृति अपना रहे हैं। यह संस्कृति राज्यों और अंतत: देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा असर ही डालेगी। सुप्रीम कोर्ट को चाहिए कि वह ऐसी कोई व्यवस्था बनाए, जिससे राजनीतिक दल अर्थव्यवस्था का बेड़ा गर्क करने वाले वादे करने से बचें।

Date:07-10-23

इंटरनेट मीडिया का घातक असर

डा. ऋतु सारस्वत, (लेखिका समाजशास्त्री हैं)

नई पीढ़ी से जुड़ी एक हालिया रिपोर्ट बहुत चिंतित करने वाली है। गैलप और वाल्टन फैमिली फाउंडेशन की एक रिपोर्ट यह कहती है कि 'जेन जी' अकेलेपन के भयावह दौर से गुजर रही है और खुद को अकेला महसूस कर रही है। 1997 से 2012 के बीच जन्म लेने वालों जेन जी पीढ़ी कहा जाता है। यह रुझान इसलिए और चिंता बढ़ाता है, क्योंकि यह वह पीढ़ी है जो पिछली पीढ़ियों की तुलना में कहीं अधिक सुविधा संपन्न है। इसके बावजूद वह तनाव, चिंता और अवसाद में डूबी हुई है। दुनिया भर के अन्य अध्ययन भी इस पीढ़ी के बारे में यही रुझान बताते हैं। दुखद पहलू यह है कि ऐसे रुझानों और मनोविज्ञानियों की चेतावनियों के बावजूद इस विषय पर आवश्यक चिंतन-मनन नहीं हो रहा है। मानसिक वेदना सहज ही किसी का ध्यानाकर्षण नहीं करती। विशेषकर इस संदर्भ में भारत की बात की जाए तो यहां 'मानसिक पीड़ा' को तनाव तथा अवसाद का क्षणिक आवेग माना जाता है, जबकि यह ऐसा भाव है कि अगर समय रहते इसे न समझा जाए और इसका उपचार नहीं किया जाए तो यह घातक भी हो सकता है।

गैलप और वाल्टन फैमिली फाउंडेशन का उक्त अध्ययन समाज में लंबे समय से कायम उस मिथक को भी तोड़ता है कि संपन्नता खुशी और संतुष्टि की पर्याय है। वास्तविकता यह है कि समाज ने भौतिकवादिता का लबादा कुछ इस तरह ओढ़ रखा है कि उसके भीतर अकेलेपन के अलावा कुछ और शेष नहीं बचता। कम समय में अधिकतम की चाह मानव को कब मशीनीकृत ढांचे में परिवर्तित कर देती है, इसका अहसास उसे स्वयं नहीं होता। अंतहीन दौड़ के बीच संबंधों के निर्वहन में व्यतीत होने वाले समय के अनुपात में उस अवधि का उपयोग कर धन अर्जित करने की गणना युवाओं को अकेलेपन का चुनाव करने के लिए प्रेरित करती है। वह भी बिना इस तथ्य पर विचार किए कि अंततोगत्वा भावनाओं को संप्रेषित करने के लिए मानवीय संबंध अपरिहार्य हैं। इस सत्य की अवहेलना युवाओं के हिस्से में अंततः वह अकेलापन लाती है, जहां उनकी पराजय, हताशा और निराशा देखने के लिए कोई रिश्ता शेष नहीं बचता। यही पीड़ा उन्हें अवसाद की ओर धकेल देती है। युवाओं के पीछे-पीछे उन किशोरों का भी जमघट है, जो यद्यपि धन अर्जन की दौड़ में अभी सम्मिलित तो नहीं हुए हैं, परंतु 'मित्रता एवं नातेदारी' जैसे शब्द उनकी शब्दावली से विलुप्त से हो रहे हैं। उसके स्थान पर उन्हें सगे-संबंधी और संगी-साथी का पर्याय प्रतीत होता है 'इंटरनेट मीडिया।' छद्म और आडंबर से भरी दुनिया 'जेन जी' को बहुत रास आ रही है।

प्रिंसटन विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग में डाटा विज्ञानी क्रिस सैयद कहते हैं कि 'इंटरनेट मीडिया किशोरों के सामाजिक जीवन पर परमाणु बम के हमले की तरह है।' सैयद की बात को अतिशयोक्ति कहकर झुठलाया नहीं जा सकता, क्योंकि विगत दशकों में हुई जनसंचार क्रांति ने सामाजिक संबंधों पर वैसा आघात नहीं किया था, जैसा कि इंटरनेट मीडिया ने किया है। यह जिस तरह से किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, उसके संबंध में मीडिया मनोविज्ञानी डान ग्रांट ने 'कंपेयर एंड डिस्पेयर' (तुलना और निराशा) शब्दावली का प्रयोग किया है। ग्रांट कहते हैं

कि इंटरनेट मीडिया पर किशोर अधिकांश समय अपने हमउम्र किशोरों के जीवन और छवियों को देखने में बिताते हैं और अपना आत्म-अवलोकन करते हैं। इस प्रक्रिया में अगर वे अपने व्यक्तित्व, बाह्य रंग-रूप तथा आर्थिक स्तर को कमतर पाते हैं तो उनके आत्मसम्मान को चोट पहुंचती है और यह उनके भीतर हीनभावना को इस सीमा तक उत्पन्न कर देता है कि कई बार वे अपने जीवन को समाप्त करने का भी विचार मन में ले आते हैं।

'एसोसिएशंस बिटवीन स्क्रीन टाइम एंड लोअर साइकोलाजिकल वेल बीइंग अमंग चाइल्ड एंड एडोलेसेंट्स: एविडेंस फ्राम ए पापुलेशन बेस्ड स्टडी' शीर्षक से हुआ शोध बताता है कि जो किशोर इंटरनेट मीडिया पर एक दिन में सात घंटे से अधिक समय व्यतीत करते हैं, उनके अवसाद ग्रस्त होने की आशंका उन किशोरों से दो गुना अधिक होती है, जो इंटरनेट मीडिया पर कम समय व्यतीत करते है। अमेरिका में हुए अध्ययनों के मुताबिक 2000 के बाद जैसे ही इंटरनेट मीडिया ने लोकप्रियता हासिल करनी शुरू की तो वहां के किशोर और युवा वयस्कों का मानसिक स्वास्थ्य निरंतर खराब होने लगा। अध्ययन यह भी बताते हैं कि उस कालावधि के पश्चात युवाओं में आत्महत्या की प्रवृत्ति में भी बढ़ोतरी देखी गई। ये आंकड़े और रुझान सिर्फ अमेरिका की 'जेन जी' पीढ़ी की वस्तुस्थिति को ही उजागर नहीं कर रहे, अपितु यह विश्व भर के किशोरों की मनःस्थिति को भी दर्शा रहे हैं। ऐसे में यह जरूरी हो जाता है कि किशोरों को सामाजिक संबंधों के प्रवाह की ओर लौटाया जाए। ऐसा करना आसान नहीं होगा।

वास्तविक संसार से दूर छद्म दुनिया किशोरों के लिए किसी स्वप्नलोक की भांति है, जहां न केवल वे अपनी खुशियां ढूंढ़ते हैं, बल्कि इसके साथ ही अपनी जगह बनाने की जिद्दोजहद भी करते हैं। कल्पनालोक की यह दुनिया अति घातक है, परंतु यह विचारने का किंचित प्रयास नहीं किया जाता कि उन्हें इस ओर धकेलने वाले भी हम ही हैं। अपनी व्यस्तताओं, आकांक्षाओं और झंझावातों के बीच हम ही हैं, जो नन्हें बच्चों के हाथों में स्मार्टफोन थमाते हैं और पता नहीं कब ये स्मार्टफोन अभिभावकों के ममतामयी स्पर्श का विकल्प बन जाते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि हम इस विषय पर गंभीरता से विचार करें और अपनी आकांक्षाओं का त्याग करते हुए बच्चों को समय दें। उनकी भावनाओं, उलझनों और हताशा के बीच भावनात्मक संबल की एक मजबूत कड़ी जोड़नी होगी, अन्यथा वे यूं ही छद्म दुनिया के शिकंजे में फंसते चले जाएंगे।

जनसत्ता

Date:07-10-23

रोजगार पर रार

संपादकीय

पश्चिम बंगाल में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम यानी मनरेगा के लागू होने में अनियमितताओं को लेकर तृणमूल कांग्रेस और केंद्र सरकार के बीच छिड़ा वाक्युद्ध अब सड़कों पर आ गया है। राज्य सरकार ने केंद्र पर हजारों करोड़ रुपए रोकने का आरोप लगाया तो केंद्र सरकार बंगाल में मनरेगा योजना में निर्देशों को ताक पर रखने की दलील दे रही है। इस आरोप-प्रत्यारोप के बीच निचले पायदान पर बैठा व्यक्ति रोजगार की मुश्किल से

जूझ रहा है। विपक्षी दल पूर्ववर्ती यूपीए सरकार में लागू की गई इस योजना को केंद्र की मौजूदा राजग सरकार पर धीरे-धीरे खत्म करने का आरोप लगाते रहे हैं। इनमें पश्चिम बंगाल में सत्तारूढ़ तृणमूल कांग्रेस सबसे ज्यादा मुखर है और उसने कई मौकों पर इस मसले पर केंद्र के खिलाफ विरोध प्रदर्शन भी किया है। पार्टी का कहना है कि केंद्र मनरेगा और प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत पंद्रह हजार करोड़ रुपए दबाए बैठा है। इससे राज्य की बड़ी गरीब आबादी प्रभावित हो रही है। हालांकि केंद्र इन आरोपों का खंडन करने के साथ ही राज्य सरकार पर मनरेगा जाब कार्ड में फर्जीवाड़ा किए जाने की बात कह रहा है।

हकीकत यह है कि मांग संचालित मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के रूप में मनरेगा समूचे देश में अपने मूल स्वरूप में जारी है और केंद्र सरकार इस मद में राशि भी आबंटित करती रही है। पश्चिम बंगाल के संदर्भ में केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय का दावा है कि मनरेगा के लिए धन की कोई कमी नहीं है, लेकिन राज्य को धन इसलिए नहीं दिया गया, क्योंकि उसने केंद्रीय निर्देशों का अनुपालन नहीं किया। केंद्र सरकार राज्य में पच्चीस लाख जाब कार्ड में फर्जीवाड़ा किए जाने का भी आरोप लगा रही है। अगर ऐसा है तो इन आरोपों की पड़ताल होनी चाहिए। राज्य सरकार को स्वयं इस मामले की जांच कर केंद्र के समक्ष सही तस्वीर रखनी चाहिए। सवाल है कि पश्चिम बंगाल को केंद्र सरकार की चिंताओं का निवारण करने में कहां दिक्कत पेश आ रही है, जबकि केंद्र कह रहा है कि उसने चार अक्तूबर तक इस योजना के लिए निर्धारित साठ हजार करोड़ रुपए के बजट में से 56,105.69 करोड़ जारी कर दिए हैं। अगर इतना पैसा राज्यों को दे दिया गया है। तो गड़बड़ी कोष में नहीं, कार्यान्वयन स्तर पर नजर आती है।

एक उपयोगिता आधारित और गरीब तबकों के कल्याण कार्यक्रम के रूप में मनरेगा का महत्त्व किसी से छिपा नहीं है। लेकिन इसमें धांधली, काम नहीं मिलने या भुगतान में देरी के आरोप अक्सर सामने आते रहे हैं। स्थानीय स्तर पर योजना की कार्यान्वयन एजेंसी के प्रति सख्ती से इस समस्या का समाधान हो सकता है। अगर किसी राज्य साथ भेदभाव हुआ है, तो इसके लिए सड़कों पर प्रदर्शन करने के बजाय उचित मंच पर तथ्यों और आंकड़ों के साथ अपनी बात रखी जा सकती है। मनरेगा को गांवों में रोजगार का सबसे ठोस जरिया माना जाता है। इसके तहत ग्रामीण परिवार को प्रतिवर्ष सौ दिनों के रोजगार की गारंटी दी जाती है। इस महत्त्वाकांक्षी योजना की उपयोगिता पूरे देश में शुरू से निर्विवाद रही है। कोरोना काल में जब बड़ी संख्या में शहरों से गांवों की ओर पलायन हुआ तो रोजी-रोटी चलाने के लिए यही योजना सबसे बड़ा सहारा बनकर उभरी। उस समय सरकार को इसका बजट लगभग दोगुना तक बढ़ाना पड़ा था। दरअसल, कल्याणकारी योजनाएं सभी राज्यों के लिए होती हैं। इनके कार्यान्वयन में लापरवाही या भ्रष्टाचार से नुकसान समाज के सबसे निचले तबके को ही उठाना पड़ता है। इसे लेकर राजनीतिक लाभ का गणित बिठाने के बजाय इस पर ठोस और ईमानदार कार्यान्वयन सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय सहारा

Date:07-10-23

नष्ट करना होगा आतंकी तंत्र

संपादकीय

नि: संदेह आतंकवाद सिर्फ भारतीय राज्य के लिए ही नहीं वल्कि पूरी दुनिया के लिए सबसे बड़ी चुनौती वना हुआ है। यह समझना जरूरी है कि आतंकवाद सामान्य अपराध के दायरे में नहीं आता है। इसका एक निश्चित सामाजिक-राजनीतिक लक्ष्य होता है जिसकी प्राप्ति के लिए गुरिल्ला युद्ध का सहारा लिया जाता है। इसलिए देश-विदेश की सभी सरकारों के लिए आतंकवादा सर्वाधिक चिंता का विषय रहा है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सभी वैश्विक मंचों पर आतंकवाद का मुद्दा जोर-शोर से उठाते रहे हैं। वृहस्पतिवार राष्ट्रीय जांच एजेंसी के दो दिवसीय आतंकवाद रोधी सम्मलेने में केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने आतंकी तंत्र को कठोरता से नष्ट करने का आह्वान किया। उनका विश्वास है कि सभी राज्यों में आतंकवाद रोधी एजेंसियों की वरीयता, ढांचा और जांच की मानक प्रक्रिया समान होनी चाहिए ताकि केंद्र और राज्य की एजेंसियों में वेहतर समन्वय हो सके। जाहिर है आतंकवाद अगर वैश्विक चुनौती है तो उसके खिलाफ लड़ाई में सबको एक साथ मिलकर आगे आना होगा। शाह ने ठीक ही कहा है कि आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में 'ग्लोवल से गांव' तक और देश के विभिन्न राज्यों से लेकर अंतरराष्ट्रीय सहयोग के साथ काम करने की जरूरत है। यहां तक तो ठीक है, लेकिन युद्ध का सामान्य नियम है कि दुश्मन को जानो और उसे कमजोर मत समझो। उसका अर्थ है कि आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में जीत हासिल करने के लिए आतंकवादी संगठनों की रणनीति, कूटनीति, युद्धशैली और सांगठनिक शक्ति, आय के स्रोत आदि वातों के वारे में निश्चित जानकारियां पता होनी चाहिए। यह जाने बगैर आतंकवादी संगठनों की गुरिल्ला युद्ध प्रणाली को ध्वस्त नहीं किया जा सकता। अगर भारत की जांच एजेंसियों को आतंकी संगठनों के ऑपरेशन से संबंधित सही जानकारियां मिल जाती हैं तो उनके खिलाफ सफल अभियान चलाने में सुरक्षा बलों को काफी मदद मिल जाती है। केंद्रीय गृह मंत्री का मानना है कि केंद्रीय और राज्य की एजेंसियों के बीच बेहतर तालमेल के कारण आतंकवादी घटनाओं पर नियंत्रण किया जा सका है। उन्होंने विभिन्न एजेंसियों के बीच एक प्रशिक्षण प्रणाली पर भी जोर दिया। लेकिन यहां गौर करने वाली वात है कि आतंकी संगठन अपनी युद्ध नीति में भी बदलाव करते रहते हैं। इसलिए एजेंसियों को उनकी दिनचर्या से जुड़ी सूचनाओं पर भी नजर रखनी होगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:07-10-23

गणना पर रोक नहीं

संपादकीय

सर्वोच्च न्यायालय ने बिहार में जाति सर्वेक्षण पर रोक लगाने से इनकार कर दिया है और इस पर बिहार सरकार की प्रतिक्रिया मांगी है। न्यायमूर्ति संजीव खन्ना और एसवीएन भट्टी की पीठ ने सरकार को अब तक प्रकाशित आंकड़ों पर आगे कोई कार्रवाई करने से रोकने या सर्वेक्षण के परिणाम प्रकाशित करने के किसी भी कदम में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया है। एक सोच एक प्रयास बनाम भारत संघ और अन्य का यह मामला अभी पूरी तरह से शांत नहीं होने वाला। पहले भी पटना उच्च न्यायालय से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक जातिगत गणना को रोकने के लिए एकाधिक बार दस्तक दी गई है, पर ज्यादातर बार न्यायालय का रुख गणना के पक्ष में ही रहा है। चुनौतियों के बावजूद अदालती सहमति से गणना हो चुकी है और उसके आंकड़े भी जारी हो चुके हैं। इसके बावजूद सर्वोच्च न्यायालय में इसे चुनौती देना किसी आश्चर्य से कम नहीं है। जब अनेक राज्यों में ऐसी ही गणना या आंकड़े जारी करने की तैयारी है, और यह एक तरह से बड़ा राजनीतिक मुद्दा बन गया है। ऐसे में, न्यायालय का दरवाजा बार-बार खटखटाने के भला क्या मायने हैं? क्या यह संसाधन के साथ-साथ अदालती समय की बर्बादी नहीं है? अदालत को भी सचेत भाव से अंतिम तौर पर इस विवाद का पटाक्षेप करना चाहिए। यह चुनौती बहुत गंभीर मामला नहीं है और इसलिए मामले की अगली सुनवाई जनवरी 2024 में रखी गई है।

तब तक बिहार सरकार के पास पर्याप्त समय है कि वह इन आंकड़ों के सहारे अपनी कुछ अच्छी योजनाओं को आकार दे और अदालत में ज्यादा मजबूती से जवाब दे। गोपनीयता या निजता के उल्लंघन का हवाला देकर जाति गणना को रुकवाने का आधार कमजोर है। भारत में किसी की जाति के बारे में जानना बहुत आसान है। लोग अपनी-अपनी जाति का लाभ लेने से खुद को अभी अलग नहीं कर पाए हैं। अत: किसी की जाति निजता का मामला नहीं है। अनेक सरकारी कागजों में जाति का उल्लेख होता है। शायद ही कोई पार्टी होगी, जिसके पास किसी इलाके के जातिगत आंकड़े न होंगे, पर ऐसे अनधिकृत आंकड़ों पर कभी रोक नहीं रही है। अब जब आधिकारिक रूप से गणना हुई है, तब उस पर रोक की तो कोई गुंजाइश ही नहीं बनती है। विरोध का एक दूसरा पहलू भी है, जिसकी दुहाई केंद्रीय गृह मंत्रालय अपने जवाबी हलफनामे में पहले दे चुका है कि 1948 में बने जनगणना अधिनियम के तहत केवल केंद्र सरकार ही जनगणना कर सकती है, पर बिहार सरकार ने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि यह जनगणना नहीं है, यह सामान्य गणना या सर्वेक्षण है। पटना उच्च न्यायालय भी मान चुका है कि यह सर्वेक्षण उचित योग्यता और न्याय के साथ विकास के वैध उद्देश्य से शुरू किया गया।

आज के समय में जाति एक बड़ी सच्चाई है। उसके आधार पर अगर कोई सुविधा किसी को हासिल हो रही है, तो वह आसानी से खत्म नहीं होने वाली। अत: देश के लोग जाति और उससे संबंधित गणना को विकास व सामाजिक न्याय के नजरिये से सही मानकर चलें, इसी में सबका भला है। आधुनिक होते देश में जाति संबंधी पुख्ता आंकड़े जरूरी हैं, यह कतई कमतर मानसिकता नहीं है। सही तरीका यही है कि समावेशी विकास से जाति के प्रभाव को धीरे-धीरे खत्म किया जाए, ताकि जाति की गणना की जरूरत न रह जाए, लेकिन इस काम में अभी बहुत समय लगेगा।